Chapter तिरसठ

बाणासुर और भगवान् कृष्ण का युद्ध

इस अध्याय में कृष्ण तथा शिव के बीच युद्ध का एवं कृष्ण द्वारा बाणासुर की भुजाएँ काटे जाने के बाद शिव द्वारा कृष्ण की स्तुति का विवरण दिया हुआ है।

जब अनिरुद्ध शोणितपुर से नहीं लौटा तो उसके परिवार वालों तथा मित्रों ने वर्षा के चातुर्मास बड़े ही कष्ट में बिताये। जब अन्त में उन्होंने नारदमुनि से सुना कि किस तरह अनिरुद्ध बन्दी बना लिया गया है, तो कृष्ण के संरक्षण में यादव योद्धाओं की एक विशाल सेना बाणासुर की राजधानी के लिए रवाना हो गई और उसने जाकर घेरा डाल दिया। बाणासुर ने अपनी उतनी ही बड़ी सेना से उसका पुरजोर मुकाबला किया। बाणासुर की सहायता के लिए शिवजी, कार्तिकेय तथा योगियों की टोली लेकर, बलराम तथा कृष्ण से लड़ने आये। बाण सात्यकि से और बाण का पुत्र साम्ब से लड़ने लगा। सारे देवता आकाश में युद्ध देखने के लिए एकत्र हो गये। भगवान् कृष्ण ने अपने बाणों से शिवजी के अनुयायियों को तंग करना शुरू कर दिया। इस तरह शिवजी को दुविधा में डाल कर वे बाणासुर की सेना का सफाया कर सके। प्रद्युम्न ने कार्तिकेय की इतनी बुरी तरह से पिटाई की कि वे युद्धभूमि छोड़ कर भाग गये और बाणासुर की सेना के शेष सैनिक बलराम की गदा के प्रहारों से नष्ट-भ्रष्ट होकर चारों दिशाओं में तितर-बितर हो गये।

अपनी सेना का विनाश देख कर बाणासुर कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए तेजी से बढ़ा। किन्तु भगवान् ने बाण के सारथी को तत्काल मार डाला और उसके रथ तथा धनुष को तोड़ डाला। तत्पश्चात् उन्होंने अपना पञ्चजन्य शंख बजा दिया। इसके बाद अपने पुत्र की रक्षा करने के उद्देश्य से बाणासुर की माता कृष्ण के समक्ष नंगी होकर आई जिन्होंने उसे देखने से बचने के लिए अपना मुख मोड़ लिया।

इस अवसर का लाभ उठाकर बाण अपनी नगरी को भाग गया।

जब भगवान् कृष्ण शिवजी की सेना के भूतप्रेतों को पूरी तरह परास्त कर चुके तो कृष्ण से लड़ने के लिए शिवज्वर नामक हथियार आया—इसके तीन सिर तथा तीन पाँव थे और यह ज्वर का साक्षात् रूप था। शिवज्वर को आते देख कृष्ण ने अपना विष्णुज्वर छोड़ा। शिवज्वर विष्णुज्वर से परास्त हो गया और कहीं भी शरण न पाकर कृष्ण से दया की भीख माँगने के लिए उनकी स्तुति करने लगा। भगवान् कृष्ण शिवज्वर से प्रसन्न हो गये और उसे भय से मुक्त करने का वचन दिया। तब उसने कृष्ण को नमस्कार किया और चलता बना।

इसके बाद बाणासुर लौटा और अपने एक हजार हाथों में नाना प्रकार के हथियार लेकर उसने कृष्ण पर पुन: आक्रमण कर दिया। किन्तु भगवान् कृष्ण ने अब अपना सुदर्शन चक्र सँभाला और उस असुर के सभी हाथों को काटना शुरू कर दिया। तब शिवजी बाणासुर के प्राणों की रक्षा के लिए कृष्ण के पास पहुँचे और जब कृष्ण उसे जीवनदान देने के लिए तैयार हो गये तो उन्होंने शिवजी से कहा, ''बाणासुर का जन्म प्रह्लाद महाराज के कुल में हुआ है, अत: यह मरने के योग्य नहीं है। मैंने इसका मिथ्या गर्व विनष्ट करने के लिए उसकी चार बाहें छोड़कर शेष सारी भुजाएँ काट दी हैं और मैंने पृथ्वी पर उसकी भारस्वरूप सेना का संहार कर दिया है। अब वह बुढ़ापा तथा मृत्यु से मुक्त हो जायेगा और निर्भय रहते हुए आपका मुख्य सेवक रहेगा।''

जब बाणासुर आश्वस्त हो गया कि उसे कोई भय नहीं है, तो उसने कृष्ण को नमस्कार किया और उषा तथा अनिरुद्ध को विवाह-रथ पर चढ़ाकर कृष्ण के समक्ष ले आया। तब कृष्ण जुलूस के आगे-आगे अनिरुद्ध तथा उसकी दुलहन को लेकर द्वारका के लिए रवाना हो गये। जब वे नवदम्पति भगवान् की राजधानी पहुँचे तो नागरिकों, भगवान् के परिवारजनों एवं ब्राह्मणों ने उनका अभिनन्दन किया।

शृईशुक उवाच
अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अपश्यताम्—न देखते हुए; च—तथा; अनिरुद्धम्—अनिरुद्ध को; तत्—उसके; बन्धूनाम्—परिवार वालों के लिए; च—तथा; भारत—हे भरतवंशी (परीक्षित महाराज); चत्वार:—चार; वार्षिक:—वर्षा ऋतु के; मासा:—महीने; व्यतीयु:—बीत गये; अनुशोचताम्—शोक करते हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे भारत, अनिरुद्ध के सम्बन्धीजन उसे लौटे न देखकर शोकग्रस्त रहे और इस तरह वर्षा के चार मास बीत गये।

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ।
प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदैवताः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

नारदात्—नारद से; तत्—उस; उपाकर्ण्य—सुनकर; वार्ताम्—समाचार को; बद्धस्य—पकड़े हुए के विषय में; कर्म—कर्म; च—तथा; प्रययुः—वे गये; शोणित-पुरम्—शोणितपुर; वृष्णयः—वृष्णिजन; कृष्ण—भगवान् कृष्ण; दैवताः—उनके पूज्य देव के रूप में प्राप्त।

नारद से अनिरुद्ध के कार्यों तथा उसके बन्दी होने के समाचार सुनकर, भगवान् कृष्ण को अपना पूज्य देव मानने वाले वृष्णिजन शोणितपुर गये।

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ।
नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥
अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् ।
रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

प्रद्युम्नः युयुधानः च—प्रद्युम्न तथा युयुधान (सात्यकि); गदः साम्बः अथ सारणः—गद, साम्ब तथा सारण; नन्द-उपनन्द-भद्र—नन्द, उपनन्द तथा भद्र; आद्याः—इत्यादि; राम-कृष्ण-अनुवर्तिनः—बलराम तथा कृष्ण के पीछे पीछे; अक्षौहिणीभिः—अक्षौहिणी के साथ; द्वादशभिः—बारह; समेताः—एकत्र; सर्वतः दिशम्—सारी दिशाओं में; रुरुधुः—घेर लिया; बाण-नगरम्—बाणासुर की नगरी को; समन्तात्—पूर्णतया; सात्वत-ऋषभाः—सात्वतों के प्रमुखों ने।

श्री बलराम तथा कृष्ण को आगे करके सात्वत वंश के प्रमुख—प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द, भद्र तथा अन्य लोग बारह अक्षौहिणी सेना के साथ एकत्र हुए और चारों ओर से बाणासुर की नगरी को पूरी तरह से घेर लिया।

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ।
प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

भज्यमान—टूट जाने से; पुर—नगरी के; उद्यान—बगीचे; प्राकार—ऊँची दीवारें, परकोटे; अट्टाल—चौकसी मीनारें, बुर्ज; गोपुरम्—तथा प्रवेशद्वार, सिंहद्वार; प्रेक्षमाणः—देखते हुए; रुषा—क्रोध से; आविष्टः—पूरित; तुल्य—समान; सैन्यः—सेना के साथ; अभिनिर्ययौ—उनकी ओर गये।

उन्हें अपनी नगरी के बाहरी बगीचे, ऊँची दीवारें, मीनारें तथा प्रवेशद्वार नष्ट-भ्रष्ट करते देखकर बाणासुर क्रोध से भर उठा और वह उन्हीं के बराबर सेना लेकर उनसे मुठभेड़ करने के

लिए निकल आया।

बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

बाण-अर्थे—बाण के लिए; भगवान् रुद्रः—शिवजी ने; स-सुतः—पुत्र (कार्तिकेय, जो कि देव-सेना के सेनापति हैं) सहित; प्रमथैः—प्रमथों (योगीजन जो कई रूपों में शिवजी की सेवा करते हैं) सहित; वृतः—संग में लेकर; आरुह्य—चढ़ कर; नन्दि—नन्दि पर; वृषभम्—अपने बैल; युयुधे—युद्ध किया; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण से।

भगवान् रुद्र अपने पुत्र कार्तिकेय तथा प्रमथों को साथ लेकर बाणासुर के पक्ष में बलराम तथा कृष्ण से लड़ने के लिए अपने बैल-वाहन नन्दि पर सवार होकर आये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि यहाँ पर *भगवान्* शब्द यह सूचित कराने के लिए प्रयुक्त हुआ है कि शिवजी स्वभाव से सर्वज्ञ हैं और इस तरह वे भगवान् कृष्ण की महानता से भलीभाँति अवगत हैं। फिर भी, यह जानते हुए कि भगवान् कृष्ण उन्हें हरा देंगे वे भगवान् की महिमा का प्रदर्शन करने के लिए उनके विरुद्ध युद्ध करने आये।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि शिवजी दो कारणों से युद्ध करने आये: पहला—भगवान् कृष्ण के आनन्द तथा उत्साहवर्धन के लिए और दूसरा—यह प्रदर्शित करने कि कृष्ण रूप में भगवान् का अवतार अन्य अवतारों से—यथा भगवान् रामचन्द्र से श्रेष्ठ है यद्यपि वे मनुष्य की भाँति लीलाएँ करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी बतलाते हैं कि कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति योगमाया ने शिवजी को उसी तरह मोहित किया जिस तरह ब्रह्मा को किया था। अपने कथन के समर्थन में आचार्य ने भक्तिरसामृत सिन्धु से *ब्रह्मरुद्रादिमोहनम्* पद उद्धृत किया है। निस्सन्देह योगमाया का कार्य भगवान् की लीलाओं के लिए उत्तम व्यवस्था करना है। इस तरह शिवजी भगवान् कृष्ण से युद्ध करने के लिए उत्साहित हो गए।

आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
कृष्णशङ्करयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

आसीत्—हुआ; सु-तुमुलम्—अत्यन्त घमासान; युद्धम्—युद्ध; अद्भुतम्—अद्भुत; रोम-हर्षणम्—शरीर के रोंगटे खड़ा कर देने वाला; कृष्ण-शङ्करयोः—कृष्ण तथा शिव के मध्य; राजन्—हे राजा (परीक्षित); प्रद्युम्न-गुहयोः—प्रद्युम्न तथा कार्तिकेय के मध्य; अपि—भी।

तत्पश्चात् अत्यन्त अद्भुत, घमासान तथा रोंगटे खड़ा कर देने वाला युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें भगवान् कृष्ण शंकर से और प्रद्युम्न कार्तिकेय से भिड़ गये।

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ।
साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

कुम्भाण्ड-कूपकर्णाभ्याम्—कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण द्वारा; बलेन सह—बलराम के साथ; संयुगः—युद्ध; साम्बस्य—साम्ब का; बाण-पुत्रेण—बाण के पुत्र के साथ; बाणेन सह—बाण के साथ; सात्यकेः—सात्यकि का।

बलरामजी ने कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण से, साम्ब ने बाण-पुत्र से और सात्यकि ने बाण से युद्ध किया।

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा इत्यादि; सुर—देवताओं के; अधीशाः—शासक; मुनयः—मुनिगण; सिद्ध-चारणाः—सिद्ध तथा चारण देवतागण; गन्धर्व-अप्सरसः—गन्धर्व तथा अप्सराएँ; यक्षाः—यक्षगण; विमानैः—विमानों से; द्रष्टुम्—देखने के लिए; आगमन्—आये।

सिद्धों, चारणों, महामुनियों, गन्धर्वों, अप्सराओं तथा यक्षों के साथ ब्रह्मा तथा अन्य शासक देवतागण अपने अपने दिव्य विमानों में चढ़ कर (युद्ध) देखने आये।

शङ्करानुचरान्शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ।
डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥
प्रेतमातृपिशाचांश्च कुष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

शङ्कर—शंकर के; अनुचरान्—अनुयायी; शौरिः—भगवान् कृष्ण ने; भूत-प्रमथ—भूतों तथा प्रमथगणों; गुह्यकान्—गुह्यकजन (कुवेर के सेवक जो स्वर्ग के कोष की रक्षा करते हैं); डाकिनीः—देवी काली की सेवा करने वाली असुरिनियों; यातुधानान्—मनुष्यों को खा जाने वाले असुर, जो राक्षस भी कहे जाते हैं; च—तथा; वेतालान्—वेतालों को; स-विनायकान्—विनायकों समेत; प्रेत—प्रेतगणों; मातृ—मातृपक्ष के असुरों; पिशाचान्—अन्तरिक्ष में रहने वाले मांस-भक्षी असुरों; च—भी; कुष्माण्डान्—शिव के अनुयायियों को जो योगियों के ध्यान को भंग करते रहते हैं; ब्रह्म-राक्षसान्—उन ब्राह्मणों की आसुरी आत्माएँ जिनकी मृत्यु पाप-कृत्यों से हुई है; द्रावयाम् आस—भगा दिया; तीक्ष्ण-अग्रैः—तेज नोक वाले; शरैः—बाणों से; शार्ङ्ग-धनुः—शार्ङ्ग नामक धनुष से; च्युतैः—छोड़े गये।

अपने शार्ङ्ग धनुष से तेज नोक वाले बाणों को छोड़ते हुए भगवान् कृष्ण ने शिवजी के विविध अनुचरों—भूतों, प्रमथों, गुह्यकों, डाकिनियों, यातुधानों, वेतालों, विनायकों, प्रेतों,

माताओं, पिशाचों, कुष्माण्डों तथा ब्रह्म-राक्षसों—को भगा दिया।

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिणाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ।
प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पृथक्-विधानि—विविध प्रकारों के; प्रायुङ्क्त—लगे हुए; पिणाकी—त्रिशूलधारी शिवजी ने; अस्त्राणि—हथियार; शार्ङ्गिणे—शार्ङ्ग धनुषधारी कृष्ण के विरुद्ध; प्रति-अस्त्रैः—विरोधी अस्त्रों द्वारा; शमयाम् आस—शान्त कर दिया; शार्ङ्ग-पाणिः—शार्ङ्ग धनुषधारी; अविस्मितः—तनिक भी चकित हुए बिना।

त्रिशूलधारी शिवजी ने शार्ङ्ग धनुषधारी कृष्ण पर अनेक हथियार चलाये। किन्तु कृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुए—उन्होंने उपयुक्त प्रतिअस्त्रों द्वारा इन सारे हथियारों को निष्प्रभावित कर दिया।

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-अस्त्रस्य—ब्रह्मास्त्र का; च—तथा; ब्रह्म-अस्त्रम्—ब्रह्मास्त्र से; वायव्यस्य—हवाई हथियार का; च—तथा; पार्वतम्—पर्वत अस्त्र से; आग्नेयस्य—आग्नेयास्त्र का; च—तथा; पार्जन्यम्—वर्षा अस्त्र से; नैजम्—अपने निजी (नारायणास्त्र) से; पाशुपतस्य—शिवजी के पाशुपतास्त्र का; च—तथा।

भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मास्त्र का सामना दूसरे ब्रह्मास्त्र से, वायुअस्त्र का सामना पर्वत अस्त्र से, अग्नि अस्त्र का वर्षा अस्त्र से तथा शिवजी के निजी पाशुपतास्त्र का सामना अपने निजी अस्त्र नारायणास्त्र से किया।

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

मोहयित्वा—मोहित करके; तु—तब; गिरिशम्—शिवजी को; जृम्भण-अस्त्रेण—जँभाई लाने वाले अस्त्र से; जृम्भितम्—जँभाई लाते हुए; बाणस्य—बाण की; पृतनाम्—सेना को; शौरिः—कृष्ण; जघान—मारने लगे; असि—तलवार; गदा—गदा; इषुभिः—तथा बाणों से।

जृम्भणास्त्र द्वारा जम्भाई लिवाकर शिवजी को मोहित कर देने के बाद कृष्ण बाणासुर की सेना को अपनी तलवार, गदा तथा बाणों से मारने लगे।

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ।

असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्य: शिखिनापक्रमद्रणात् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

स्कन्द:—कार्तिकेय; प्रद्युम्न-बाण—प्रद्युम्न के बाणों की; ओघै:—वर्षा से; अर्द्यमान:—व्यथित हुआ; समन्तत:—चारों ओर; असृक्—रक्त; विमुञ्चन्—गिराते हुए; गात्रेभ्य:—अपने अंगों से; शिखिना—मोर वाहन पर; अपाक्रमत्—चला गया; रणात्—युद्धभूमि से।

कार्तिकेय चारों ओर से हो रही प्रद्युम्न के बाणों की वर्षा से व्यथित थे अत: वे अपने मोर-वाहन पर चढ़ कर युद्धभूमि से भाग गये क्योंकि उनके अंग-प्रत्यंग से रक्त निकलने लगा था।

कुम्भाण्डकूपकर्णश्च पेततुर्मुषलार्दितौ ।
दुद्रुवुस्तदनीकनि हतनाथानि सर्वत: ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कुम्भाण्ड-कूपकर्ण: च—कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण; पेतत:—गिर पड़े; मुषल—(बलराम की) गदा से; अर्दितौ—चोट खाकर; दुद्रुवु:—भाग गये; तत्—उनकी; अनीकानि—सेनाएँ; हत—मारे गये; नाथानि—जिनके सेना-नायक; सर्वत:—सभी दिशाओं में।

कुम्भाण्ड तथा कूपकर्ण बलराम की गदा से चोट खाकर धराशायी हो गये। जब इन दोनों असुरों के सैनिकों ने देखा कि उनके सेना-नायक मारे जा चुके हैं, तो वे सभी दिशाओं में तितर-बितर हो गये।

विशीर्यमाणम्स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षित: ।
कृष्णमभ्यद्रवत्सङ्ख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

विशीर्यमाणम्—छिन्न-भिन्न किये हुए; स्व—अपनी; बलम्—सेना को; दृष्ट्वा—देखकर; बाण:—बाण; अति—अत्यन्त; अमर्षित:—क्रुद्ध; कृष्णम्—कृष्ण पर; अभ्यद्रवत्—आक्रमण कर दिया; सङ्ख्ये—युद्धभूमि में; रथी—रथ पर सवार; हित्वा—एक तरफ छोड़ कर; एव—निस्सन्देह; सात्यकिम्—सात्यकि को।

बाणासुर अपनी समूची सेना को छिन्नभिन्न होते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। सात्यकि से लड़ना छोड़ कर और अपने रथ पर सवार होकर युद्धभूमि को पार करते हुए उसने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया।

धनूंष्याकृष्य युगपद् बाण: पञ्चशतानि वै ।
एकैकस्मिन्शरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मद: ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धनूंषि—धनुषों को; आकृष्य—खींचकर; युगपत्—एकसाथ; बाण:—बाण ने; पञ्च-शतानि—पाँच सौ; वै—निस्सन्देह; एक-एकस्मिन्—हर एक पर; शरौ—तीर; द्वौ द्वौ—दो दो; सन्दधे—चढ़ाया; रण—युद्ध के कारण; दुर्मद:—घमंड से मतवाला।

युद्ध करने की सनक में बहकर बाण ने एकसाथ अपने पाँच सौ धनुषों की डोरियाँ खींच कर हर डोरी पर दो दो बाण चढ़ाये।

तानि चिच्छेद भगवान्धनूंसि युगपद्धरिः ।
सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तानि—उन; चिच्छेद—काट दिया; भगवान्—भगवान्; धनूंसि—धनुषों को; युगपत्—एक ही बार में; हरिः—श्रीकृष्ण ने; सारथिम्—रथ हाँकने वाले को; रथम्—रथ को; अश्वान्—घोड़ों को; च—तथा; हत्वा—मार कर; शङ्खम्—अपना शंख; अपूरयत्—बजाया।

भगवान् श्री हरि ने बाणासुर के सारे धनुषों को एक ही साथ काट दिया और उसके सारथी, रथ तथा घोड़ों को मार गिराया। तत्पश्चात् भगवान् ने अपना शंख बजाया।

तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्—उसकी (बाणासुर की); माता—माता; कोटरा नाम—कोटरा नामक; नग्ना—नंगी; मुक्त—खोले; शिरः-रुहा—अपने बाल; पुरः—सामने; अवतस्थे—खड़ी हो गई; कृष्णस्य—कृष्ण के; पुत्र—अपने पुत्र के; प्राण—जीवन; रिरक्षया—बचाने की आशा से।

तभी बाणासुर की माता कोटरा अपने पुत्र के प्राण बचाने की इच्छा से भगवान् कृष्ण के समक्ष नंग-धड़ंग तथा बाल बिखेरे आ धमकी।

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ।
बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाविशत्पुरम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; तिर्यक्—पीछे की ओर किये; मुखः—अपना मुँह; नग्नाम्—नग्न स्त्री को; अनिरीक्षन्—न देखते हुए; गदाग्रजः—कृष्ण; बाणः—बाण; च—तथा; तावत्—उस अवसर पर; विरथः—रथविहीन; छिन्न—टूटा हुआ; धन्वा—धनुष; आविशत्—प्रविष्ट हुआ; पुरम्—नगरी में।

भगवान् गदाग्रज ने उस नंगी स्त्री को देखे जाने से बचने के लिए अपना मुख पीछे की ओर मोड़ लिया और रथविहीन हो जाने तथा धनुष के टूट जाने से बाणासुर इस अवसर का लाभ उठाकर अपने नगर को भाग गया।

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रीशिरास्त्रीपात् ।

अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२॥

शब्दार्थ

विद्राविते—भगा दिये जाने पर; भूत-गणे—शिवजी के सारे अनुचरों के; ज्वरः—शिवजी की सेवा करने वाला साक्षात् ज्वर; तु—लेकिन; त्रि—तीन; शिराः—सिर वाले; त्रि—तीन; पात्—पाँव वाले; अभ्यधावत—की ओर दौड़ा; दाशार्हम्—भगवान् कृष्ण को; दहन्—जलाते हुए; इव—सदृश; दिशः—दिशाएँ; दश—दसों।.

जब शिवजी के अनुचर भगा दिये गये, तो तीन सिर तथा तीन पैर वाला शिवज्वर कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए आगे लपका। ज्योंही शिवज्वर निकट पहुँचा तो ऐसा लगा कि वह दसों दिशाओं की सारी वस्तुओं को जला देगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने शिवज्वर का निम्नलिखित वर्णन उद्धृत किया है—

ज्वरस्त्रिपदस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः।

भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः॥

"भयानक शिवज्वर के तीन पाँव, तीन सिर, छह भुजाएँ तथा नौ आँखें थीं। राख की वर्षा करते हुए वह जैसे ब्रह्माण्ड के संहार के समय यमराज सा प्रतीत हो रहा था।"

अथ नारायणः देवः तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात; नारायणः देवः—भगवान् नारायण (कृष्ण) ने; तम्—उस (शिवज्वर) को; दृष्ट्वा—देखकर; व्यसृजत्—छोड़ दिया; ज्वरम्—अपना साक्षात् ज्वर (जो अतीव शीतल था, जबकि शिवज्वर अतीव गर्म था); माहेश्वरः—महेश्वर का; वैष्णवः—भगवान् विष्णु के; च—तथा; युयुधाते—लड़ने लगे; ज्वरौ—दो ज्वर; उभौ—एक-दूसरे के विरुद्ध।.

तत्पश्चात् इस अस्त्र को पास आते देखकर भगवान् नारायण ने अपना निजी ज्वर अस्त्र, विष्णुज्वर, छोड़ा। इस तरह शिवज्वर तथा विष्णुज्वर एक-दूसरे से युद्ध करने लगे।

माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः ।
अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ।
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥ २४॥

शब्दार्थ

माहेश्वरः—शिव का (ज्वर अस्त्र); समाक्रन्दन्—चिल्लाता हुआ; वैष्णवेन—वैष्णवज्वर के; बल—बल से; अर्दितः—पीड़ित; अलब्ध्वा—न पाकर; अभयम्—निडरता; अन्यत्र—और कहीं; भीतः—डरा हुआ; माहेश्वरः ज्वरः—शिव ज्वर; शरण—शरण के लिए; अर्थी—लालायित; हृषीकेशम्—हर एक की इन्द्रियों के स्वामी, भगवान् कृष्ण की; तुष्टाव—उसने प्रशंसा की; प्रयत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर।.

विष्णुज्वर के बल से परास्त शिवज्वर पीड़ा से चिल्ला उठा। किन्तु कहीं आश्रय न पाकर

भयभीत हुआ शिवज्वर इन्द्रियों के स्वामी कृष्ण के पास शरण पाने की आशा से आया। इस तरह वह अपने हाथ जोड़कर उनकी प्रशंसा करने लगा।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इंगित किया है, यह महत्त्वपूर्ण है कि शिवज्वर अपने स्वामी शिव को छोड़कर सीधे भगवान् कृष्ण की शरण लेने गया।

ज्वर उवाच
नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशम्
सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं
यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गम्प्रशान्तम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

ज्वरः उवाच—(शिव) ज्वर ने कहा; नमामि—मैं नमस्कार करता हूँ; त्वा—तुमको; अनन्त—अनन्त; शक्तिम्—शक्ति वाले; पर—परम; ईशम्—स्वामी; सर्व—सबों के; आत्मानम्—आत्मा; केवलम्—शुद्ध; ज्ञप्ति—चेतना की; मात्रम्—समग्रता; विश्व—ब्रह्माण्ड की; उत्पत्ति—उत्पत्ति; स्थान—पालन; संरोध—तथा संहार का; हेतुम्—कारण; यत्—जो; तत्—वह; ब्रह्म—ब्रह्म, परम सत्य; ब्रह्म—वेदों द्वारा; लिङ्गम्—जिसका अप्रत्यक्ष प्रसंग (अनुमान); प्रशान्तम्—पूर्णतया शान्त।

शिवज्वर ने कहा : हे अनन्त शक्ति वाले, समस्त जीवों के परमात्मा भगवान्, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप शुद्ध तथा पूर्ण चेतना से युक्त हैं और इस विराट ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा संहार के कारण हैं। आप पूर्ण शान्त हैं और आप परम सत्य (ब्रह्म) हैं जिनका प्रकारान्तर से सारे वेद उल्लेख करते हैं।

तात्पर्य : इसके पूर्व शिवज्वर अपने को अनन्त शक्तिशाली मान रहा था और इसीलिए वह श्रीकृष्ण को जला देना चाहता था। किन्तु अब वह स्वयं भस्म हो चुका था और यह समझते हुए कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं वह विनयपूर्वक उन्हें नमस्कार करने और उनकी स्तुति करने आया।

आचार्यों के अनुसार *सर्वात्मानम्* शब्द सूचक है कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं—समस्त जीवों को चेतना प्रदान करने वाले हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कृष्ण करते हैं—*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मुझी से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अपनी टीका में बल देते हैं कि शिवज्वर ने कई प्रकार से अपने स्वामी की अपेक्षा कृष्ण की श्रेष्ठता का अनुभव कर लिया था। इसीलिए शिवज्वर ने कृष्ण को *अनन्त-शक्ति, परेश* तथा शिवजी के भी—*सर्वात्मा*—कह कर पुकारा है।

केवलं ज्ञप्तिमात्रम् शब्द सूचित करते हैं कि भगवान् कृष्ण शुद्ध सर्वज्ञान से युक्त हैं। हम अपने सीमित ज्ञान के अनुसार इस जगत में कर्म करते हैं लेकिन भगवान् कृष्ण अपने अनन्त ज्ञान से सृजन, पालन तथा संहार का असीम कार्य सम्पन्न करते हैं। जैसाकि श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं, वायु जैसे स्थूल तत्त्वों के कार्य भी उन पर आश्रित हैं। इसकी पुष्टि *तैत्तिरीय उपनिषद* (२.८.१) में हुई है—*भीषास्माद् वातः पवते*—उनके डर से वायु बहती है। इस तरह भगवान् कृष्ण सभी जीवों के चरम आराध्य हैं।

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो
द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाह-
स्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कालः—समय; दैवम्—भाग्य; कर्म—भौतिक कर्म के फल; जीवः—व्यष्टि जीव; स्वभावः—उसकी इच्छाएँ; द्रव्यम्—पदार्थ का सूक्ष्म रूप; क्षेत्रम्—शरीर; प्राणः—प्राण-वायु; आत्मा—मिथ्या अहंकार; विकारः—(ग्यारह इन्द्रियों के) रूपान्तर; तत्—इन सबों का; सङ्घटः—संमेल (सूक्ष्म शरीर के रूप में); बीज—बीज; रोह—तथा अंकुर का; प्रवाहः—निरन्तर बहाव; त्वत्—तुम्हारा; माया—भौतिक मोहिनी शक्ति; एषा—यह; तत्—इसके; निषेधम्—निषेध (आप); प्रपद्ये—शरण के लिए आया हूँ।

काल, भाग्य, कर्म, जीव तथा उसका स्वभाव, सूक्ष्म भौतिक तत्त्व, भौतिक शरीर, प्राण-वायु, मिथ्या अहंकार, विभिन्न इन्द्रियाँ तथा जीव के सूक्ष्म शरीर में प्रतिबिम्बित इन सबों की समग्रता—ये सभी आपकी माया हैं, जो बीज तथा पौधे के अन्तहीन चक्र जैसे हैं। इस माया का निषेध, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।

तात्पर्य : *बीजरोह प्रवाह* शब्द की व्याख्या इस तरह की जाती है : बद्धजीव भौतिक शरीर ग्रहण करता है, जिससे वह भौतिक जगत का भोग करने का प्रयास करता है। यह शरीर भावी जगत का *बीज* है क्योंकि जब कोई व्यक्ति इस शरीर से कर्म करता है, तो उससे अन्य कर्म उत्पन्न होते हैं, जो बढ़कर (*रोह*) दूसरा भौतिक शरीर धारण करने के लिए बाध्य कर देते हैं। दूसरे शब्दों में, भौतिक जीवन कर्म तथा फल की शृंखला है। भगवान् की शरण में जाने का निर्णय बद्धजीव को इस व्यर्थ के बारम्बार वृद्धि तथा फल से छुटकारा दिला देता है।

श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार *तन्निषेधं प्रपद्ये* शब्द बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण *निषेधावधिभूतम्*—निषेध की अवधि—हैं। दूसरे शब्दों में, जब सारे मोह का निषेध हो जाता है, तो

परम सत्य बचा रहता है।

शिक्षा की विधि ज्ञानार्जन द्वारा अज्ञान के उन्मूलन की विधि कही जा सकती है। आगमन, निगमन तथा प्रज्ञा विधियों से हम बाहर से सुन्दर, मोहमय तथा अपूर्ण का निराकरण करने का प्रयास करते हैं और अपने को पूर्णज्ञान के पद तक उठाना चाहते हैं। अन्ततोगत्वा जब मोह का निषेध हो जाता है तब जो ठोस रूप में बच जाता है, वह परम सत्य भगवान् है।

पिछले श्लोक में शिवज्वर ने भगवान् को *सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्* कहा है। अब शिवज्वर भगवान् के विषय में अपना दार्शनिक वर्णन यह कह कर समाप्त करता है कि संसार के विविध पक्ष भी परमेश्वर की शक्तियाँ हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उल्लेख करते हैं कि भगवान् का अपना शरीर तथा इन्द्रियाँ, जैसाकि *तन्निषेधम्* शब्द से पता चलता है, भगवान् के शुद्ध आध्यात्मिक शरीर से अभिन्न हैं। भगवान् के शरीर तथा इन्द्रियाँ न तो उनसे बाहर हैं न ही उन्हें आच्छादित करती हैं अपितु भगवान् अपने आध्यात्मिक रूप तथा इन्द्रियों से अभिन्न हैं। पूर्ण ब्रह्म अपनी असीम सम्मोहक विविधता से युक्त श्रीकृष्ण ही हैं।

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै-
र्देवान्साधून्लोकसेतून्बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान्
जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ २७॥

शब्दार्थ

नाना—विविध; भावैः—मनोभावों से; लीलया—लीलाओं के रूप में; एव—निस्सन्देह; उपपन्नैः—कल्पित; देवान्—देवताओं; साधून्—साधुओं; लोक—संसार के; सेतून्—धर्मसंहिता को; बिभर्षि—स्थिर रखते हो; हंसि—संहार करते हो; उत्-मार्गान्—मार्ग से विपथ; हिंसया—हिंसा द्वारा; वर्तमानान्—जीवित; जन्म—जन्म; एतत्—यह; ते—तुम्हारा; भार—भार; हाराय—उतारने के लिए; भूमेः—पृथ्वी का।

आप देवताओं, साधुओं तथा इस जगत के लिए धर्मसंहिता को बनाये रखने के लिए अनेक भावों से लीलाएँ करते हैं। इन लीलाओं से आप उनका भी वध करते हैं, जो सही मार्ग से हट जाते हैं और हिंसा द्वारा जीवन-यापन करते हैं। निस्सन्देह आपका वर्तमान अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिए है।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२९) में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

"न तो मैं किसी से द्वेष करता हूँ न मैं किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं सबों के प्रति समभाव रखता हूँ। किन्तु जो भी भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है—मुझमें है—और मैं भी उसका मित्र हूँ।"

देवता तथा साधु पुरुष (*देवान् साधून्*) भगवान् की इच्छा पूरी करने के लिए समर्पित रहते हैं। देवता प्रशासक की तरह कार्य करते हैं और साधुजन अपने उपदेशों तथा आदर्शों से आत्म-साक्षात्कार तथा पवित्रता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। किन्तु जो लोग प्राकृतिक अर्थात् ईश्वर के नियमों का उल्लंघन करते हैं और अन्यों के साथ हिंसा करके जीते हैं, वे भगवान् द्वारा विविध लीला-अवतारों में विनष्ट कर दिये जाते हैं। जैसाकि भगवान् *भगवद्गीता* (४.११) में कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्य-हम्*। वे निष्पक्ष हैं किन्तु जीवों के कर्मों के प्रति समुचित प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

तप्तोऽहम्ते तेजसा दुःसहेन
शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेऽन्घ्रिमूलं
नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तप्तः—जलाया हुआ; अहम्—मैं; ते—तुम्हारी; तेजसा—शक्ति द्वारा; दुःसहेन—दुस्सह; शान्त—ठण्डा, शीतल; उग्रेण—फिर भी तप्त; अति—अत्यधिक; उल्बणेन—भयानक; ज्वरेण—ज्वर से; तावत्—तब तक; तापः—जलन; देहिनाम्—देहधारियों की; ते—तुम्हारे; अङ्घ्रि—चरणों के; मूलम्—तलवा; न—नहीं; उ—निस्सन्देह; सेवेरन्—सेवा करते हैं; यावत्—जब तक; आशा—भौतिक इच्छाओं से; अनुबद्धाः—सतत बँधे हुए।

मैं आपके भयानक ज्वर अस्त्र के भयानक तेज से त्रस्त हूँ जो शीतल होकर भी ज्वल्यमान है। सारे देहधारी जीव तब तक कष्ट भोगते हैं जब तक वे भौतिक महत्वाकांक्षाओं से बँधे रहते हैं और आपके चरणकमलों की सेवा करने से दूर भागते हैं।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में शिवज्वर ने कहा था कि जो लोग हिंसा का जीवन बिताते हैं उन्हें भगवान् के हाथों वैसी ही हिंसा मिलती है। किन्तु यहाँ पर वह उसके आगे यह कहता है कि जो लोग भगवान् की शरण ग्रहण नहीं करते वे विशेष रूप से दण्डनीय हैं। यद्यपि शिवज्वर ने अभी तक स्वयं हिंसात्मक कार्य किया था किन्तु भगवान् की शरण में आ जाने तथा अपना सुधार कर लेने के कारण आशावान है कि उसे भगवत्कृपा प्राप्त हो सकेगी। दूसरे शब्दों में, वह अब भगवद्भक्त बन गया है।

श्रीभगवानुवाच
त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ।
यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; त्रि-शिरः—हे तीन सिरों वाले; ते—तुमसे; प्रसन्नः—प्रसन्न; अस्मि—हूँ; व्येतु—चला जाये; ते—तुम्हारा; मत्—मेरे; ज्वरात्—ज्वर अस्त्र से; भयम्—भय; यः—जो भी; नौ—हमारा; स्मरति—स्मरण करता है; संवादम्—वार्तालाप; तस्य—उसका; त्वत्—तुम्हारा; न भवेत्—नहीं हो; भयम्—भय।

भगवान् ने कहा : हे तीन सिरों वाले, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। मेरे ज्वर अस्त्र से तुम्हारा भय दूर हो और जो कोई भी हमारी इस वार्ता को सुने वह तुमसे भयभीत न हो।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् शिवज्वर को अपना भक्त मान लेते हैं और उसे पहला आदेश यह देते हैं कि तुम कभी भी अपने तप्त ज्वर से उन लोगों को नहीं डराओगे जो भगवान् की इस लीला को श्रद्धापूर्वक सुनते हैं।

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ।
बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन्जनार्दनम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहे जाने पर; अच्युतम्—अच्युत भगवान् कृष्ण द्वारा; आनम्य—झुक कर; गतः—चला गया; माहेश्वरः—शिव का; ज्वरः—ज्वर अस्त्र; बाणः—बाण; तु—लेकिन; रथम्—अपने रथ पर; आरूढः—चढ़ कर; प्रागात्—आगे आया; योत्स्यन्—युद्ध करने के उद्देश्य से; जनार्दनम्—भगवान् कृष्ण से।

ऐसा कहे जाने पर माहेश्वर-ज्वर ने अच्युत भगवान् को प्रणाम किया और चला गया। किन्तु तभी बाणासुर अपने रथ पर सवार होकर भगवान् कृष्ण से लड़ने के लिए प्रकट हुआ।

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ।
मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात; बाहु—अपनी भुजाओं से; सहस्रेण—एक हजार; नाना—अनेक; आयुध—हथियार; धरः—धारण किये; असुरः—असुर ने; मुमोच—छोड़ा; परम—अत्यधिक; क्रुद्धः—क्रुद्ध; बाणान्—बाणों को; चक्र-आयुधे—चक्रधारी पर; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

हे राजन्, अपने एक हजार हाथों में असंख्य हथियार लिए उस अतीव क्रुद्ध असुर ने चक्रधारी भगवान् कृष्ण पर अनेक बाण छोड़े।

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
चिच्छेद भगवान्बाहून्शाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; अस्यतः—फेंके गये; अस्त्राणि—हथियारों को; असकृत्—बारम्बार; चक्रेण—अपने चक्र से; क्षुर—तेज; नेमिना—परिधि वाले; चिच्छेद—काट डाला; भगवान्—भगवान् ने; बाहून्—भुजाएँ; शाखाः—टहनियों; इव—की तरह; वनस्पतेः—वृक्ष की।

जब बाण भगवान् पर लगातार हथियार बरसाता रहा तो उन्होंने अपने तेज चक्र से बाणासुर की भुजाओं को काट डाला मानो वे वृक्ष की टहनियाँ हों।

बाहुषु छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ।
भक्तानकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

बाहुषु—बाहों पर; छिद्यमानेषु—काटी जाती हुई; बाणस्य—बाणासुर की; भगवान् भवः—शिवजी; भक्त—अपने भक्त के प्रति; अनुकम्पी—दयालु; उपव्रज्य—पास जाकर; चक्र-आयुधम्—चक्रधारी कृष्ण से; अभाषत—बोले।

बाणासुर की भुजाएँ कटते देखकर शिवजी को अपने भक्त के प्रति दया आ गयी अतः वे भगवान् चक्रायुध (कृष्ण) के पास पहुँचे और उनसे इस प्रकार बोले।

श्रीरुद्र उवाच

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

श्री-रुद्रः उवाच—शिव ने कहा; त्वम्—तुम; हि—अकेले; ब्रह्म—परम सत्य; परम्—परम; ज्योतिः—प्रकाश; गूढम्—छिपा हुआ; ब्रह्मणि—ब्रह्म में; वाक्-मये—भाषा के रूप में (वेदों में); यम्—जिसको; पश्यन्ति—देखते हैं; अमल—निष्कलंक; आत्मानः—जिनके हृदय; आकाशम्—आकाश के; इव—सदृश; केवलम्—शुद्ध।

श्री रुद्र ने कहा : आप ही एकमात्र परम सत्य, परम ज्योति तथा ब्रह्म की शाब्दिक अभिव्यक्ति के भीतर के गुह्य रहस्य हैं। जिनके हृदय निर्मल हैं, वे आपका दर्शन कर सकते हैं क्योंकि आप आकाश की भाँति निर्मल हैं।

तात्पर्य : परम सत्य समस्त प्रकाश का उद्गम है अतएव वह परम प्रकाश है—आत्म-प्रकाशमय है। इस परम ब्रह्म की गुह्य विवेचना वेदों में की गई है इसलिए सामान्य पाठक की समझ के परे है। श्रील जीव गोस्वामी द्वारा *गोपाल तापनी उपनिषद* से उद्धृत निम्नलिखित कथन यह प्रदर्शित करते हैं कि वैदिक ध्वनियों से कभी कभी ब्रह्म का उद्घाटन किस तरह होता है—*ते होचुरुपासनमेतस्य परात्मनो गोविन्दस्याखिलाधारिणो ब्रूहि* (पूर्व खण्ड १७)—उन्होंने (चार कुमारों ने) (ब्रह्मा से)

कहा—कृपया बतलायें कि गोविन्द की किस तरह पूजा करनी चाहिए जो परमात्मा हैं और जो प्रत्येक विद्यमान पदार्थ की आधारशिला हैं। *चेतश्चेतनानाम्* (पूर्व खण्ड २१)—वह समस्त जीवों में प्रमुख है। तथा *तं ह देवम् आत्मवृत्तिप्रकाशम्* (पूर्व खण्ड २३)—अपने आप की अनुभूति होने पर परमेश्वर की अनुभूति की जाती है। महान् आचार्य जीव गोस्वामी भी *श्रीमद्भागवत* से एक श्लोक (१.१०.४८) उद्धृत करते हैं—*गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्*—परब्रह्म मनुष्य सदृश रूप में छिपा है।

चूँकि भगवान् शुद्ध हैं, तो फिर कुछ लोग कृष्ण के रूप तथा कार्यों को अशुद्ध रूप में क्यों अनुभव करते हैं? आचार्य जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि जिनके स्वयं के हृदय अशुद्ध हैं, वे शुद्ध भगवान् को नहीं समझ सकते। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती अर्जुन के प्रति भगवान् के ही उपदेश को *श्री-हरिवंश* से उद्धृत करते हैं—

तत्परं परमं ब्रह्म सर्वं विभजते जगत्।

ममैव तद्धनं तेजो ज्ञातुमर्हसि भारत॥

"उस (समग्र प्रकृति) से श्रेष्ठ परब्रह्म है, जिससे इस सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार होता है। हे भारत! तुम्हें जान लेना चाहिए कि परब्रह्म मेरे केन्द्रीभूत तेज से युक्त है।"

इस प्रकार शिवजी अपने भक्त को बचाने के लिए अपने नित्य आराध्य प्रभु भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हैं। भगवान् की मोहिनी शक्ति ने शिवजी को कृष्ण से भिड़ने के लिए प्रेरित किया था किन्तु अब यह युद्ध समाप्त हो चुका था और अपने भक्त को बचाने के लिए शिवजी ये सुन्दर स्तुतियाँ करते हैं।

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो
द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा
अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥ ३५॥
रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः
केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः
स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

नाभिः—नाभि; नभः—आकाश; अग्निः—अग्नि; मुखम्—मुख; अम्बु—जल; रेतः—वीर्य; द्यौः—स्वर्ग; शीर्षम्—सिर; आशाः—दिशाएँ; श्रुतिः—श्रवणेन्द्रिय; अङ्घ्रिः—पाँव; उर्वी—पृथ्वी; चन्द्रः—चन्द्रमा; मनः—मन; यस्य—जिसकी; दृक्—दृष्टि; अर्कः—सूर्य; आत्मा—आत्मचेतना; अहम्—मैं (शिव); समुद्रः—समुद्र; जठरम्—उदर; भुज—बाहु; इन्द्रः—इन्द्र; रोमाणि—शरीर के रोएँ; यस्य—जिसके; ओषधयः—औषधीय पौधे; अम्बु-वाहाः—जलवाहक बादल; केशाः—सिर के बाल; विरिञ्चः—ब्रह्मा; धिषणा—विवेक, बुद्धि; विसर्गः—जननेन्द्रियाँ; प्रजा-पतिः—मनुष्य को उत्पन्न करने वाला; हृदयम्—हृदय; यस्य—जिसका; धर्मः—धर्म; सः—वह; वै—निस्सन्देह; भवान्—आप; पुरुषः—आदि-स्रष्टा; लोक—सारे लोक; कल्पः—जिससे उत्पन्न।

आकाश आपकी नाभि है, अग्नि आपका मुख है, जल आपका वीर्य है और स्वर्ग आपका सिर है। दिशाएँ आपकी श्रवणेन्द्रिय (कान) हैं, औषधि-पौधे आपके शरीर के रोएँ हैं तथा जलधारक बादल आपके सिर के बाल हैं। पृथ्वी आपका पाँव है, चन्द्रमा आपका मन है तथा सूर्य आपकी दृष्टि (नेत्र) है, जबकि मैं आपका अहंकार हूँ। समुद्र आपका उदर है, इन्द्र आपकी भुजा है, ब्रह्मा आपकी बुद्धि है, प्रजापति आपकी जननेन्द्रिय (लिंग) है और धर्म आपका हृदय है। असल में आप आदि-पुरुष हैं, लोकों के स्त्रष्टा हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि जिस तरह फल के भीतर रहने वाले छोटे-छोटे कीट फल को नहीं समझ पाते उसी तरह हम क्षुद्र जीव उस परम सत्य को नहीं समझ सकते जिसमें हम स्थित हैं। भगवान् की विराट अभिव्यक्ति को समझना कठिन है, तो फिर श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप के विषय में क्या कहा जा सकता है ? अतएव हमें कृष्णभावनामृत की शरण लेनी चाहिए। भगवान् इसे समझने में हमारी मदद स्वयं करेंगे।

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्
धर्मस्य गुप्त्यै जगतो हिताय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता
विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; अवतारः—अवतार; अयम्—यह; अकुण्ठ—असीम; धामन्—हे शक्ति वाले; धर्मस्य—न्याय की; गुप्त्यै—रक्षा के लिए; जगतः—ब्रह्माण्ड के; हिताय—लाभ के लिए; वयम्—हम; च—भी; सर्वे—सभी; भवता—आपके द्वारा; अनुभाविताः—प्रबुद्ध तथा अधिकारप्राप्त; विभावयामः—हम प्रकट करते तथा उत्पन्न करते हैं; भुवनानि—जगतों को; सप्त—सात।

हे असीम शक्ति के स्वामी, इस भौतिक जगत में आपका वर्तमान अवतार न्याय के सिद्धान्तों की रक्षा करने तथा समग्र ब्रह्माण्ड को लाभ दिलाने के निमित्त है। हममें से प्रत्येक देवता आपकी कृपा तथा सत्ता पर आश्रित है और हम सभी देवता सात लोक मण्डलों को उत्पन्न

करते हैं।

तात्पर्य : एक ऐतिहासिक व्यक्ति की तरह जब शिवजी कृष्ण की स्तुति कर रहे हैं, तो एक संदेह उठ सकता है क्योंकि बाहरी तौर पर कृष्ण मनुष्य जैसे स्वरूप में शिव के समक्ष खड़े हैं। किन्तु यह तो भगवान् की अहैतुकी कृपा है कि वे हमारी मानवी आँखों के लिए दृश्य रूप में प्रकट होते हैं। यदि हम परम सत्य श्रीकृष्ण को समझना चाहते हैं, तो हमें चाहिए कि कृष्णभावनाभावित के किसी मान्य अधिकारी से सुनें यथा *भगवद्गीता* में साक्षात् कृष्ण से या मान्य वैष्णव अधिकारी शिव से सुनें जो यहाँ भगवान् की स्तुति कर रहे हैं।

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीय-
स्तुर्यः स्वदृग्धेतुरहेतुरीशः ।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं
स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; एकः—एक; आद्यः—आदि; पुरुषः—परम पुरुष; अद्वितीयः—अद्वितीय; तुर्यः—दिव्य; स्व-दृक्—स्वयं प्रकाश; हेतुः—कारण; अहेतुः—कारणरहित; ईशः—परम नियन्ता; प्रतीयसे—अनुभव किये जाते हो; अथ अपि—इतने पर भी; यथा—के अनुसार; विकारम्—विविध रूपान्तरों; स्व—अपनी; मायया—माया से; सर्व—समस्त; गुण—गुणों की; प्रसिद्ध्यै—पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए।

आप अद्वितीय, दिव्य तथा स्वयं-प्रकाश आदि-पुरुष हैं। अहैतुक होकर भी आप सबों के कारण हैं और परम नियन्ता हैं। तिस पर भी आप पदार्थ के उन विकारों के रूप में अनुभव किये जाते हैं, जो आपकी माया द्वारा उत्पन्न हैं। आप इन विकारों की स्वीकृति इसलिए देते हैं जिससे विविध भौतिक गुण पूरी तरह प्रकट हो सकें।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : श्रील श्रीधर स्वामी की विवेचना है कि *आद्यः पुरुषः* पद सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण अपना विस्तार महाविष्णु के रूप में करते हैं—जो जगत का भार सँभालने वाले तीन पुरुषों में प्रथम हैं। भगवान् *एक अद्वितीय* हैं क्योंकि न तो कोई भगवान् के तुल्य है, न उनसे भिन्न है। कोई भी व्यक्ति पूर्णतया भगवान् के समान नहीं है किन्तु सारे जीव भगवान् की शक्ति के अंश होने के कारण गुण में उनसे भिन्न नहीं हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु इस अचिन्त्य स्थिति को *अचिन्त्य भेदाभेद* कहते हैं। परम पुरुष में अनन्त आध्यात्मिक चेतना होती है, जबकि जीवों में अत्यल्प चेतना होती है और वह भी मोह द्वारा आच्छादित होती रहती है।

श्रील जीव गोस्वामी *आद्यः पुरुषः* की व्याख्या करते हुए *सात्वत तन्त्र* से यह उद्धरण देते हैं—*विष्णोस्तु त्रीणिरूपाणि*—विष्णु के तीन रूप हैं। श्रील जीव गोस्वामी भी श्रुति से भगवान् का वचन उद्धृत करते हैं—*पूर्वमेवाहमिहासम्*—प्रारम्भ में इस जगत में केवल मैं था। यह कथन *पुरुष अवतार* को बताने वाला है, जो विराट जगत के पहले स्थित था। श्रील जीव गोस्वामी ने एक श्रुति मंत्र भी—*तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्*—भगवान् का पुरुष पद ऐसा है—उद्धृत किया है। वस्तुतः भगवान् कृष्ण पुरुष अवतार के सार हैं क्योंकि वे *तुरीय* हैं जैसाकि इस श्लोक में वर्णित है। जीव गोस्वामी ने *तुरीय* (शाब्दिक अर्थ चतुर्थ) शब्द की व्याख्या *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (११.१५.१६) पर श्रील श्रीधर स्वामी की टीका से उद्धरण देते हुए की है।

विराट् हिरण्यगर्भश्च कारणं चेत्युपाधयः।

ईशस्य यत्त्रिभिर्हीनं तुरीयं तद् विदुर्बुधाः॥

''भगवान् का विराट रूप, उनका हिरण्यगर्भ रूप तथा भौतिक प्रकृति का आदि हेतु रूप—ये सभी सापेक्ष विचार हैं किन्तु क्योंकि भगवान् इन तीनों द्वारा आच्छादित नहीं होते अतः बुद्धिमान व्यक्ति उन्हें ''चौथा'' कहते हैं।''

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार *तुरीय* शब्द सूचक है कि भगवान् चतुर्व्यूह नामक अपने चौरंगी विस्तार के चौथे सदस्य हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण वासुदेव हैं।

भगवान् कृष्ण *स्व-दृक्* अर्थात् केवल अपने को ठीक से देख सकने वाले हैं क्योंकि उनका अस्तित्व आध्यात्मिक है और वे अतीव शुद्ध हैं। वे *हेतु* अर्थात् हर वस्तु के कारणस्वरूप हैं फिर भी *अहेतु* हैं अर्थात् कारणरहित हैं। इसीलिए वे *ईश* अर्थात् परम नियन्ता हैं।

इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियाँ विशिष्ट दार्शनिक महत्त्व रखती हैं। जब ईश्वर एक हैं, तो फिर विभिन्न लोग उनको भिन्न भिन्न प्रकार से क्यों देखते हैं? इसकी आंशिक व्याख्या यहाँ दी गई है। भगवान् की बहिरंगा शक्ति, माया के कारण भौतिक प्रकृति निरन्तर *विकार* अवस्था में रहती है। तब तो एक अर्थ से भौतिक प्रकृति *असत्* अर्थात् असल नहीं है। किन्तु ईश्वर परम सत्य हैं और वे सारी वस्तुओं के भीतर हैं तथा सारी वस्तुएँ उनकी शक्ति हैं अतः भौतिक वस्तुओं तथा शक्तियों में कुछ सच्चाई रहती है। इसलिए कुछ लोग भौतिक शक्ति के एक पक्ष को देखते हैं और सोचते हैं, ''यह

सत्य है'' जबकि अन्य लोग दूसरे पक्ष को देखते हैं और सोचते हैं, ''नहीं, सत्य यह है।'' बद्धजीव होने के कारण हम सभी भौतिक प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों से आवृत हैं इसीलिए हम परम सत्य या परमेश्वर का वर्णन अपनी दूषित दृष्टि के अनुसार करते हैं। फिर भी भौतिक प्रकृति के आच्छादक गुण—यथा हमारी बद्ध बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ—असल हैं (भगवान् की शक्ति होने के कारण) इसीलिए सारी वस्तुओं के भीतर से हम भगवान् को थोड़ा-बहुत व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से देख सकते हैं। इसीलिए इस श्लोक में *प्रतीयसे* अर्थात् ''आप देखे जाते हैं'' आया है। यही नहीं, भौतिक प्रकृति के आच्छादक गुणों की अभिव्यक्ति के बिना सृष्टि का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता, यह उद्देश्य है बद्धजीवों को भगवान् के बिना, भोग करने का अत्यधिक प्रयास करने देना जिससे कि वे अन्ततः ऐसे भ्रामक विचार की व्यर्थता को समझ सकें।

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया
छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्व-
मात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

यथा एव—जिस तरह; सूर्यः—सूर्य; पिहितः—ढका; छायया—छाया से; स्वया—अपनी; छायाम्—छाया को; च—तथा; रूपाणि—दृश्य रूप; च—भी; सञ्चकास्ति—प्रकाशित करता है; एवम्—उसी तरह से; गुणेन—भौतिक गुण (मिथ्या अहंकार का) द्वारा; अपिहितः—ढका हुआ; गुणान्—पदार्थ के गुणों के; त्वम्—तुम; आत्म-प्रदीपः—स्वयं प्रकाशित; गुणिनः—इन गुणों का स्वामी (जीव); च—तथा; भूमन्—हे सर्वशक्तिमान।

हे सर्वशक्तिमान, जिस प्रकार सूर्य बादल से ढका होने पर भी बादल को तथा अन्य सारे दृश्य रूपों को भी प्रकाशित करता है उसी तरह आप भौतिक गुणों से ढके रहने पर भी स्वयं प्रकाशित बने रहते हैं और उन सारे गुणों को, उन गुणों से युक्त जीवों समेत, प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर शिवजी पिछले श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियों में व्यक्त विचार को और अधिक स्पष्ट करते हैं। बादल तथा सूर्य का दृष्टान्त उपयुक्त है। सूर्य अपनी शक्ति से बादल उत्पन्न करता है, जो सूर्य को हमारी दृष्टि से ओझल बनाता है। फिर भी सूर्य ही बादल को तथा उसी के साथ अन्य सारी वस्तुओं को हमारे लिए दृश्य बनाता है। इसी प्रकार भगवान् अपनी माया का विस्तार करते हैं और हमें सीधे अपना दर्शन करने से रोकते हैं। तो भी ईश्वर ही अकेले ऐसे हैं, जो अपनी आच्छादक शक्ति—भौतिक जगत—को हमारे समक्ष प्रकट करते हैं। इस तरह भगवान् *आत्म-प्रदीप*—स्वयं प्रकाशित—हैं।

उनके अस्तित्व की सच्चाई से ही सारी वस्तुएँ दृश्य बनती हैं।

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसकी; माया—माया से; मोहित—मोहित; धियः—उनकी बुद्धि; पुत्र—पुत्र; दार—पत्नी; गृह—घर; आदिषु—इत्यादि में; उन्मज्जन्ति—वे ऊपर उठ आते हैं; निमज्जन्ति—डूब जाते हैं; प्रसक्ताः—पूरी तरह फँसे हुए; वृजिन—दुख के; अर्णवे—समुद्र में।

आपकी माया से मोहित बुद्धि वाले अपने बच्चों, पत्नी, घर इत्यादि में पूरी तरह से लिप्त और भौतिक दुख के सागर में निमग्न लोग कभी ऊपर उठते हैं, तो कभी नीचे डुब जाते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि *उन्मज्जन्ति* सूचक है उच्चतर योनियों—यथा देव योनि में उत्थान और *निमज्जन्ति* द्योतक है निम्न योनियों—जड़ जीवन यथा वृक्षों का। जैसाकि *वायु पुराण* में कहा गया है—*विपर्ययश्च भवति ब्रह्मत्वस्थावरत्वयोः*—जीव ब्रह्मा से लेकर जड़ प्राणी तक के बीच चक्कर लगाता रहता है।

श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि भगवान् की स्तुति कर चुकने के बाद शिवजी अब बाणासुर के लिए भगवान् की कृपा प्राप्त करने की मूल इच्छा के विषय को आगे बढ़ाते हैं। इस प्रक्रार इस श्लोक में तथा अगले चार श्लोकों में शिवजी बाणासुर को भगवान् के साथ उसकी वास्तविक स्थिति का उपदेश देते हैं। बाण के लिए शिव द्वारा दया की याचना श्लोक ४५ में मिलती है।

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

देव—भगवान् द्वारा; दत्तम्—दिया हुआ; इमम्—इसको; लब्ध्वा—प्राप्त करके; नृ—मनुष्यों का; लोकम्—संसार; अजित—अवश्य; इन्द्रियः—उसकी इन्द्रियाँ; यः—जो; न आद्रियेत—आदर नहीं करेगा; त्वत्—तुम्हारे; पादौ—पाँव; सः—वह; शोच्यः—दयनीय; हि—निस्सन्देह; आत्म—अपना; वञ्चकः—ठग, धोखा देने वाली।

जिसने ईश्वर से यह मनुष्य जीवन उपहार के रूप में प्राप्त किया है किन्तु फिर भी जो अपनी इन्द्रियों को वश में करने तथा आपके चरणों का आदर करने में विफल रहता है, वह सचमुच शोचनीय है क्योंकि वह अपने को ही धोखा देता है।

तात्पर्य : शिवजी यहाँ उन लोगों की भर्त्सना करते हैं, जो भगवान् की भक्ति करने से कतराते हैं।

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; त्वाम्—तुमको; विसृजते—छोड़ देता है; मर्त्यः—मरणशील मनुष्य; आत्मानम्—उसकी सही आत्मा; प्रियम्—सर्वप्रिय; ईश्वरम्—भगवान् को; विपर्यय—जो सर्वथा विपरीत हैं; इन्द्रिय-अर्थ—इन्द्रियविषयों के; अर्थम्—हेतु; विषम्—विष को; अत्ति—खाता है; अमृतम्—अमृत को; त्यजन्—त्यागते हुए।

जो मर्त्य प्राणी अपने इन्द्रियविषयों के लिए, जिनका की स्वभाव सर्वथा विपरीत है, आपको, अर्थात् उसकी असली आत्मा, सर्वप्रिय मित्र तथा स्वामी हैं, छोड़ देता है, वह अमृत छोड़ कर उसके बदले में विष-पान करता है।

तात्पर्य : उपर्युक्त व्यक्ति शोचनीय है क्योंकि वह अपने वास्तविक प्रिय स्वामी को छोड़ देता है और उसे स्वीकार करता है, जो प्रिय नहीं है और ईश्वरीय नहीं है—अर्थात् क्षणिक इन्द्रिय-तृप्ति को स्वीकार करता है, जिससे कष्ट तथा मोह उत्पन्न होता है।

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; ब्रह्मा—ब्रह्मा; अथ—तथा; विबुधाः—देवतागण; मुनयः—मुनिगण; च—और; अमल—शुद्ध; आशयाः—चेतना वाले; सर्व-आत्मना—हार्दिक रूप से; प्रपन्नाः—शरणागत; त्वाम्—तुमको; आत्मानम्—आत्मा; प्रेष्ठम्—प्रियतम; ईश्वरम्—प्रभु को।

मैंने, ब्रह्मा ने, अन्य देवता तथा शुद्ध मन वाले मुनिगण—सभी लोगों ने पूर्ण मनोयोग से आपकी शरण ग्रहण की है। आप हमारे प्रियतम आत्मा तथा प्रभु हैं।

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं
समं प्रसान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं
भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; त्वा—तुम; जगत्—ब्रह्माण्ड के; स्थिति—पालन; उदय—उत्थान; अन्त—तथा मृत्यु; हेतुम्—कारण; समम्—समभाव; प्रशान्तम्—परम शान्त; सुहृत्—मित्र; आत्म—आत्मा; दैवम्—तथा पूज्य स्वामी; अनन्यम्—अद्वितीय; एकम्—अनोखा; जगत्—जगतों के; आत्म—तथा सारे जीवों के; केतम्—आश्रय; भव—भौतिक जीवन के; अपवर्गाय—समाप्ति (मुक्ति) के लिए; भजाम—हम पूजा करें; देवम्—भगवान् की।

हे भगवन्, भौतिक जीवन से मुक्त होने के लिए हम आपकी पूजा करते हैं। आप ब्रह्माण्ड

के पालनकर्ता और इसके सृजन तथा मृत्यु के कारण हैं। आप समभाव तथा पूर्ण शान्त, असली मित्र, आत्मा तथा पूज्य स्वामी हैं। आप अद्वितीय हैं और समस्त जगतों तथा जीवों के आश्रय हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि भगवान् असली मित्र हैं क्योंकि वे उस व्यक्ति की उचित बुद्धि को गति प्रदान करते हैं, जो ईश्वर तथा आत्मा के विषय में सत्य जानना चाहता है। श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बल देते हैं कि *भवापवर्गाय* शब्द शुद्ध भगवत्प्रेम की सर्वोच्च मुक्ति का सूचक है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह भी बतलाते हैं कि भगवान् *समम्* हैं—पूर्णतया विषयनिष्ठ और सन्तुलित हैं जबकि अन्य सारे जीव वास्तविकता को पूरी तरह न समझने के कारण कभी भी विषयनिष्ठ नहीं हो सकते। जो लोग भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं, वे भी भगवान् की चरम चेतना का आश्रय लेकर *समम्* बन जाते हैं।

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती
मयाभयं दत्तममुष्य देव ।
सम्पाद्यतां तद्भवतः प्रसादो
यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; मम—मेरा; इष्टः—कृपा किया हुआ; दयितः—अत्यन्त प्रिय; अनुवर्ती—अनुचर; मया—मेरे द्वारा; अभयम्—अभय; दत्तम्—दिया गया; अमुष्य—उसका; देव—हे प्रभु; सम्पाद्यताम्—आप इसे प्रदान करें; तत्—इसलिए; भवतः—अपनी; प्रसादः—कृपा; यथा—जिस तरह; हि—निस्सन्देह; ते—तुम्हारा; दैत्य—असुरों का; पतौ—प्रमुख (प्रह्लाद) के लिए; प्रसादः—कृपा।

यह बाणासुर मेरा अति प्रिय तथा आज्ञाकारी अनुचर है और इसे मैंने अभयदान दिया है। अतएव हे प्रभु, इसे आप उसी तरह अपनी कृपा प्रदान करें जिस तरह आपने असुर-राज प्रह्लाद पर कृपा दर्शाई थी।

तात्पर्य : शिवजी बाणासुर की सहायता करना चाहते हैं क्योंकि इस असुर ने शिवजी के ताण्डव-नृत्य के समय संगीत वाद्य बजाकर उनके प्रति असीम भक्ति प्रदर्शित की थी। बाण पर शिवजी की कृपा का दूसरा कारण यह है कि वह प्रह्लाद तथा बलि जैसे महान् भक्तों का वंशज है।

श्रीभगवानुवाच

यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ।
भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; यत्—जो; आत्थ—कहा है; भगवन्—हे प्रभु; त्वम्—तुमने; नः—हम पर; करवाम—हमें करना चाहिए; प्रियम्—सन्तोषप्रद, सुखकर; तव—तुम्हारा; भवतः—आपके द्वारा; यत्—जो; व्यवसितम्—निश्चित; तत्—वह; मे—मेरे द्वारा; साधु—उत्तम; अनुमोदितम्—सहमति व्यक्त की गई।

भगवान् ने कहा : हे प्रभु, आपकी प्रसन्नता के लिए हमें अवश्य ही वह करना चाहिए जिसके लिए आपने हमसे प्रार्थना की है। मैं आपके निर्णय से पूरी तरह सहमत हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण द्वारा शिव को *भगवान्* कह कर सम्बोधित किया जाना हमें विचित्र नहीं लगना चाहिए। सारी वस्तुएँ भगवान् की विभिन्नांश हैं, गुणात्मक दृष्टि से वे उनसे अभिन्न हैं और शिवजी विशेष रूप से शक्तिमान शुद्ध जीव हैं जिनमें भगवान् के अनेक गुण पाये जाते हैं। जिस प्रकार पिता बड़ी ही खुशी के साथ अपने प्रिय पुत्र को अपनी सम्पत्ति में साझीदार बना लेता है उसी तरह भगवान् प्रसन्नतापूर्वक शुद्ध जीवों को अपनी कुछ शक्ति तथा ऐश्वर्य दे देते हैं। जिस तरह पिता बड़े ही गर्व तथा खुशी से अपने पुत्रों के सद्गुणों का अवलोकन करता है उसी तरह भगवान् कृष्णभावनामृत में प्रबल शुद्ध जीवों की बड़ाई करने में अतीव प्रसन्न होते हैं। परमेश्वर इसीलिए शिवजी को *भगवान्* कह कर सम्बोधित करके बड़ाई करने में प्रसन्न होते हैं।

अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः ।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

अवध्यः—जिसका वध नहीं किया जाये; अयम्—वह; मम—मेरे द्वारा; अपि—निस्संदेह; एषः—यह; वैरोचनि-सुतः—वैरोचनि (बलि) का पुत्र; असुरः—असुर; प्रह्लादाय—प्रह्लाद को; वरः—वर; दत्तः—दिया हुआ; न वध्यः—अवध्य; मे—मेरे द्वारा; तव—तुम्हारा; अन्वयः—वंशज।

मैं वैरोचनि के इस असुर-पुत्र को नहीं मारूँगा क्योंकि मैंने प्रह्लाद महाराज को वर दिया है कि मैं उसके किसी भी वंशज का वध नहीं करूँगा।

दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ।
सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

दर्प—मिथ्या गर्व; उपशमनाय—दमन करने के लिए; अस्य—उसका; प्रवृक्णाः—काटे हुए; बाहवः—भुजाएँ; मया—मेरे द्वारा; सूदितम्—मारी गयी; च—तथा; बलम्—सेना; भूरि—विशाल; यत्—जो; च—तथा; भारायितम्—भार बन जाने से; भुवः—पृथ्वी के लिए।

मैंने बाणासुर के मिथ्या गर्व का दमन करने के लिए ही इसकी भुजाएँ काट दी हैं। और मैंने इसकी विशाल सेना का वध किया है क्योंकि वह पृथ्वी पर भार बन चुकी थी।

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यत्यजरामरः ।
पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

चत्वारः—चार; अस्य—इसकी; भुजाः—बाँहें; शिष्टाः—बची हुई; भविष्यति—होंगी; अजर—बूढ़ी न होने वाली; अमरः—तथा अमर; पार्षद—संगी; मुख्यः—प्रधान; भवतः—आपका; न कुतश्चित्-भयः—किसी भी तरह का इसे भय नहीं रहेगा; असुरः—असुर।

यह असुर, जिसकी अभी भी चार बाँहें हैं अजर तथा अमर होगा और आपके प्रधान सेवक के रूप में सेवा करेगा। इस तरह उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा।

इति लब्ध्वाभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसासुरः ।
प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वो समुपानयत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; लब्ध्वा—पाकर; अभयम्—भय से मुक्ति; कृष्णम्—कृष्ण को; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—सिर के बल; असुरः—असुर; प्रद्युम्निम्—प्रद्युम्न-पुत्र, अनिरुद्ध को; रथम्—अपने रथ पर; आरोप्य—बैठाकर; स-वध्वः—उसकी पत्नी सहित; समुपानयत्—उन्हें ले आया।

इस तरह भयमुक्त होकर बाणासुर ने अपना माथा जमीन पर टेककर भगवान् कृष्ण को नमस्कार किया। तब बाण ने अनिरुद्ध तथा उसकी पत्नी को उनके रथ पर बैठाया और उन्हें कृष्ण के सामने ले आया।

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलङ्कृतम् ।
सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

अक्षौहिण्या—पूरी अक्षौहिणी के द्वारा; परिवृतम्—घिरा; सु—सुन्दर; वासः—वस्त्र; समलङ्कृतम्—तथा गहनों से सजा; स-पत्नीकम्—पत्नी सहित अनिरुद्ध को; पुरः-कृत्य—सामने करके; ययौ—वह (कृष्ण) गया; रुद्र—शिवजी से; अनुमोदितः—विदा लेकर।

तब भगवान् कृष्ण ने अपनी टोली के आगे अनिरुद्ध तथा उसकी पत्नी को कर लिया। दोनों सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से खूब सजाये गये थे और उन्होंने उन दोनों को पूरी अक्षौहिणी

से घेर लिया। इस तरह भगवान् कृष्ण ने शिव से विदा ली और प्रस्थान कर दिया।

स्वराजधानीं समलङ्कृतां ध्वजै:
सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ।
विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनै-
रभ्युद्यत: पौरसुहृद्द्विजातिभि: ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

स्व—अपनी; राजधानीम्—राजधानी को; समलङ्कृताम्—पूरी तरह सजायी गयी; ध्वजै:—झंडियों से; स—तथा सहित; तोरणै:—विजय तोरणों; उक्षित—पानी से छिड़काव किये गये; मार्ग—जिसके रास्ते; चत्वराम्—तथा चौराहे; विवेश—प्रवेश किया; शङ्ख—शंख; आनक—ढोल; दुन्दुभि—तथा नगाड़ों की; स्वनै:—गूँज से; अभ्युद्यत:—सत्कार किया गया; पौर—नगरवासियों द्वारा; सुहृत्—अपने सम्बन्धियों द्वारा; द्विजातिभि:—तथा ब्राह्मणों द्वारा।

तत्पश्चात् भगवान् अपनी राजधानी में प्रविष्ट हुए। नगर को झंडियों तथा विजय तोरणों से खूब सजाया गया था और इसकी गलियों तथा चौराहों पर पानी छिड़कवाया गया था। ज्योंही शंख, आनक तथा दुन्दुभियाँ गूँजने लगीं त्योंही भगवान् के सम्बन्धी, ब्राह्मण तथा जनता के लोग उनका स्वागत करने के लिए आगे आये।

य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम् ।
संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजय: ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

य:—जो भी; एवम्—इस प्रकार; कृष्ण-विजयम्—कृष्ण की विजय को; शङ्करेण—शंकर के साथ; च—तथा; संयुगम्—युद्ध को; संस्मरेत्—स्मरण करता है; प्रात:—सुबह; उत्थाय—जाग कर; न—नहीं; तस्य—उसकी; स्यात्—होगी; पराजय:—हार।

जो भी व्यक्ति प्रात:काल उठकर शिव के साथ युद्ध में कृष्ण की विजय का स्मरण करता है उसे कभी भी पराजय का अनुभव नहीं करना होगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''बाणासुर और भगवान् कृष्ण का युद्ध'' नामक तिरसठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।